हिन्दी साहित्य का इतिहास

एम. ए. (हिन्दी) I सेमेस्टर

डॉ० अनिरुद्ध प्रसाद
हिन्दी विभाग
महाराजा कॉलेज, आरा

02.07.20

तृतीय पत्र

प्रश्न; आप रीतिकाल को प्रवर्तक किसे मानते हैं? सप्रमाण उत्तर दीजिए।

उत्तर:

संस्कृत साहित्य में 'रीति' शब्द का प्रयोग काव्य-शास्त्र के सिद्धांत अथवा काव्य-शैली के अर्थ में हुआ है किंतु हिन्दी में इसका प्रयोग सर्वत्र सामान्य अर्थ में हुआ जिन ग्रंथों में काव्य-सिद्धांतों का विवेचन किया गया हो वह रीति-ग्रंथ कहलाता है और जिस काव्य का कलेवर इन नियमों से अनुबद्ध हो वह रीति-काव्य कहलाता है।

'आचार्य' शब्द के प्रायः दो अर्थ हैं — (1) दीक्षा गुरु (2) नवीन सिद्धांत का प्रतिपादक। कालांतर में आचार्य शब्द का अर्थ शिथिल हो गया। समाज शास्त्र जैसा पंडित को भी आचार्य कह दिया जाता है। काव्य के क्षेत्र में वही व्यक्ति आचार्य कहलाता है जिसने किसी नवीन सम्प्रदाय को जन्म दिया हो या काव्यशास्त्र का व्याख्याता अथवा काव्यशास्त्र जैसा हो।

हिन्दी साहित्य में रीतिग्रंथों की प्रणयन से पूर्व संस्कृत साहित्य में आचार्यों की एक लम्बी परंपरा रही है जिन्होंने विभिन्न संप्रदायों को जन्म दिया। मम्मट के समन्वयकारी विवेचना से मूल सिद्धांत विषयक उद्भावनाओं के लिए प्रायः कोई अवकाश नहीं रह गया था जो कोई आचार्य मौलिक उद्भावना करते। ऐसी स्थिति में, हिन्दी में कोई आचार्य की पदवी से नवाजा जा सकता है तो वह केशवदास को छोड़कर दूसरा कोई नजर नहीं आता है।

केशवदास निश्चय ही रीतिकाल के प्रवर्तक कवि के रूप में सामने आते हैं। उन्होंने मुख्यतः काव्यशास्त्र पर अपनी लेखनी चलाई। केशव वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने साहित्य के शास्त्र को स्पर्श किया। हिन्दी में रीति परंपरा का शुभारंभ प्रायः उनके जन्म-काल से ही हो गया था। वीरगाथा काल एवं भक्तिकाल के कवियों की वाणी मुक्तात्मा होते हुए भी

P.T.O

रीति के बंधनों को छोड़ नहीं पायी थी। चंद, नरपति नाल्ह, सूर, तुलसी आदि कवियों की इस ओर की जागरूकता इसका सहज प्रमाण है। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि साहित्य के आदिकाल से ही रीति ग्रंथों की एक समृद्ध परंपरा रही है। क्योंकि हिन्दी साहित्य कोई स्वतंत्र रूप से फूटा कोई नवीन काव्यधारा नहीं है। वह संस्कृत काव्य के पर्यवसान रीतिग्रंथों में ही हुआ है। अतः हिन्दी साहित्य का प्रारंभ रीति ग्रंथों की रचना के साथ ही हुआ है।

'शिव सिंह सरोज' में पुष्य नामक एक कवि का उल्लेख है जिसने संवत् 700 के आसपास दोहे में एक अलंकार ग्रंथ की रचना की थी। हिन्दी कवियों में सर्वप्रथम विद्यापति के ग्रंथों में रीति के संकेत मिलते हैं। विद्यापति के प्रायः अधिकांश ग्रंथों में शृंगार के चित्र मिलते हैं। कृपाराम के 'हिततरंगिणी' की रचनाओं से भी यह सिद्ध होता है कि उस समय लक्षण ग्रंथ लिखे जा रहे थे।

सूरदास कृपाराम के समकालीन थे। उनका 'साहित्य लहरी' ग्रंथ चित्रालंकारों का का समूह है। सूर के उपरान्त तुलसीदास का 'बरवै रामायण' में भी रीति का स्पष्ट प्रभाव है। रहीम का 'बरवै नायिका भेद' पर एक स्वतंत्र ग्रंथ है।

सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ से ही रस, रीति और अलंकार के लक्षणों का निर्माण होने लगा था। गोपा कवि ने 'राम भूषण' जैसे अलंकार ग्रंथ लिखे। संवत् 1616 में मोहन लाल मिश्र ने 'शृंगार सागर' की रचना की।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य में रीति की परिपाटी अब तक चली आ रही है किंतु अब तक ऐसा कोई आचार्य नहीं हुआ था जिसके व्यक्तित्व से उसे बल प्राप्त होता। सर्वप्रथम आचार्य केशवदास ने काव्य रीति के प्रति सजग उसके विभिन्न अंगों का सांगोपांग वर्णन किया।

केशव चमत्कार को मानने वाले अलंकारिक सिद्धांत पर आस्था रखते थे। अतः सिद्धांत वाक्य के रूप में उनका यह दोहा प्रसिद्ध है—

जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त।।

व्यवहारिक रूप से अलंकारों के प्रति मोह भामह और दण्डी जैसे आचार्यों में भी थे किंतु आचार्य केशवदास ने 'रसिकप्रिया' ग्रंथ रचकर खुद को रसवादी कहने से रोक नहीं पाये। केशव ने अलंकार को 'रसराज' माना है। उन्होंने बड़ी तन्मयता से नायिका के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों का वर्णन किया है। केशव ने पूर्व ध्वनि और उत्तर ध्वनि दोनों संप्रदायों के विचारों को हिन्दी में अवतरित किया। आचार्य शुक्ल के मतानुसार –
"भामह और दंडी के समय में अलंकार और अलंकार्य का भेद स्पष्ट नहीं हुआ था। रस, रीति, अलंकार सबके लिए ही 'अलंकार' शब्द का व्यवहार होता था। यही बात हम केशव के 'कविप्रिया' में पाते हैं।" इसमें कोई संदेह नहीं कि केशव की 'कविप्रिया' में अलंकार और अलंकार्य में अभेद स्थापित करने वाली पूर्व ध्वनि काल की विचारधारा की अभिव्यक्ति है। श्रृंगार को 'रसराज' मानने वाली 'रसिकप्रिया' पर उत्तर ध्वनि काल की सिद्धांत परंपरा का गहरा प्रभाव है। स्पष्ट है कि केशव हिन्दी के प्रथम आचार्य हैं। उन्होंने संस्कृत काव्य-शास्त्र की पूर्व ध्वनि तथा उत्तर ध्वनि दोनों परंपराओं का निर्वाह किया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत है कि निःसंदेह काव्य रीति का सम्यक विवेचन सर्वप्रथम केशवदास ने ही किया। रीतिग्रंथों की अविरल धारा केशव की 'कविप्रिया' के पश्चात 50 वर्ष तक चली। केशव के पश्चात रीति ग्रंथों की परंपरा चिंतामणि से शुरु होती है। जिसका आधार भामह, दण्डी इत्यादि न होकर चंद्रालोक, 'कुवलयानंद', 'काव्य प्रकाश', साहित्य-दर्पण आदि ग्रंथों को जाता है।

शुक्ल जी का उपर्युक्त कथन कुछ विवाद पैदा करता है। दरअसल 'कुवलयानंद' एवं 'चंद्रालोक' जैसे ग्रंथ न केवल आलंकारिक हैं बल्कि रस की उद्भावना का भी उनमें अभाव है। जबकि केशवदास की कविप्रिया एवं 'रसप्रिया' जिस तरह अलंकारिक हैं उसी प्रकार रस युक्त भी हैं। यद्यपि केशव चमत्कारिक एवं अलंकारवादी हैं। किंतु उन्होंने अपने सिद्धांत वाक्य में कविता का रसास्वादन पर भी जोर दिया। अतः स्पष्ट है कि रीतिकाल का प्रवर्तक केशवदास हैं।